॥ ✽

श्री १००६ शिव ... १ श्री १०६ चन्द्रशेखरेश्वर २ श्री १ ... भद्दत्तेश्वर ३ श्री १०६-कालीप्रसादेश्वर ४ श्री १०६ देवीदयाल्वीश्वर ५ श्री १०६ विश्वनाथेश्वर ६ ...पूजनम् ।

अर्थात्

श्री १००६ महादेवाश्रमस्वामि १ श्री १००६ विशुद्धानन्दसरश्वतीस्वामि २ श्री १००६ भावानन्दतीर्थस्वामि ३ श्री १०६ देवदत्तशर्मसुधी-४ श्री १०६ कैलासचन्द्रशर्मशिरोमणि-५ श्री १०६ बालशास्त्रि ६ (श्री-१०६ विश्वनाथशर्म) प्रभृतीनां गुरुचरणानां नानाविध-विषयक उपदेशः ।

काशिकागस्त्यकुण्डधीधीस्थपूज्यपादसुधीन्द्रद्विवेदश्री १००६ देवदत्तेश्वर पादपद्मपादुकापरिचर्यापरायणेन श्री १०६ द्विवेदपण्डितवररामनाथशर्मणा मुद्रयित्वा प्रचारितः ।

वैक्रमाब्दे ८०
श्रवन १३ से
माघी १५ तक

प्रथमावृत्ती
पुस्तक संख्या १०००

॥ श्री ॥

जगद्गुरुश्री१०८शङ्कराचार्य ... परम्परा

नारायण के शिष्य पद्मभू के शिष्य वशिष्ठ के शिष्य तत्पुत्रपराशर के शिष्य व्यास के शिष्य ... गौड़पादके शिष्य गोविन्दयोगीन्द्र केशिष्य श्री

विश्वरूपाचार्य । पश्चिमाम्नाय । शारदामठ । ... अवगतगोत्र । तीर्थ, आश्रम, श्रीपाद, उपपद । द्वारका ... देवता । भद्रकालीदेवी । गङ्गा, गोमती, तीर्थ । स्वरूप ... वेद । (तत्वमसि) महावाक्य । पद्मपादाचार्य । पूर्व ... गोत्र । गोवर्द्धनमठ । भोगवारसंप्रदाय । वन, आरण्य, ... त्तमक्षेत्र । जगन्नाथदेवता । विमलादेवी । महोदधितीर्थ । ... ऋग्वेद । (प्रज्ञानमानन्दंब्रह्म) महावाक्य । तोटकाचार्य ... जोशीमठ । आनन्दवारसंप्रदाय । भृगुगोत्र । गिरि,पर्वत ... वदरिकाश्रममुक्तिक्षेत्र । नारायणदेवता । पुण्यागिरिदेवी ... तीर्थ । नन्दब्रह्मचारी । अथर्ववेद । (अयमात्मा ब्रह्म) ... पृथ्वीधराचार्य । दक्षिणाम्नाय । शृङ्गेरीमठ । भूवार ... गोत्र । सरस्वती, भारती, पुरी, उपपद । रामेश्वरक्षेत्र ... देवता । कामाक्षादेवी । तुङ्गभद्रातीर्थ । चैतन्यब्रह्मचारी ... (अहंब्रह्मास्मि) महावाक्य ।

यह सब मठाम्नाय आदि ग्रन्थों में लि...

शिवशंकर मिश्र द्वारा, भारत-प्रेस, काशी में ...

जीवानां हितकारितां प्रकटयन् शुभ्रैश्चरित्रैर्निजैः
गुणैः श्री परमेश्वरोऽप्यविकलं पूर्णावतारं दधौ ॥
यत्रैषा सरयूजलाप्लुततटा यागादि धर्मोचिता
मन्वाद्यैः कथिता चिरं विजयते साकेतभूः पावनी ॥ २ ॥

संपूर्ण जीवों के हित के लिए श्रीरामचन्द्रजीने जहाँ स्वयं अवतार धारण किया है उस अवध देश की बड़ाई जितनीकी जाय सब थोड़ी है। क्योंकि मनुस्मृतिआदि में उस देश की पवित्रता लिखी है, और यज्ञ आदि के लिये वह भूमि अति पवित्र कही है और सरयू नदी से भी उस भूमि की पवित्रता होती है और सभी अवतारों में रामावतार उत्तम समझा जाता है क्योंकि इस अवतार के चरित्र सर्वथा निर्दोष हैं ॥ २ ॥

विद्याचार विवेक धैर्य धनिका मेधाविनस्तापसा
आहूयाध्वर साधनाय विधिना यत् कान्यकुब्जाद् द्विजाः ॥
श्री रामेण समर्च्य यत्र विनयाधिक्यात् प्रतिष्ठापिता
नैच्छन् हातुममूं ततोऽपि धरणीयं सर्वतोराजते ॥ ३ ॥

कहते हैं कि रामचन्द्र ने कन्नौजसे विद्वान् सदाचार विवेकी और बुद्धिमान तपस्वी उत्तम ब्राह्मणों को अपने अश्वमेध यज्ञ के साधन करने के लिए उचित आदर पूर्वक बुलाया, और उनकी यथोक्त पूजादि करके बड़े विनय से उनको टिकाया जिनके कि वंशधर आज तक उस भूमि में सरयूपारी ब्राह्मण नाम से विख्यात हैं तो इससे भी उस भूमि की बड़ाई सिद्ध होती है ॥ ३ ॥

यत्रा द्यापि नरान् न मुञ्चति कदाप्यापामरं मार्द्दवं
सत्यं धीर्विनयस्तपस्तु चरिता चारादि लोकोत्तरम् ॥
विप्रान् सार्थक पंक्तिपावनपदं धैर्याद्दरिद्रानपि
स्व स्वाचार ममुञ्चतो धन यशोलाभेऽपि तीव्रव्रतान् ॥ ४ ॥

वहां के ब्राह्मण क्या क्षत्रिय आदि सभी लोग बड़े नम्र सत्यवादी तपस्वी आचार विचार में दुनिया भर से विलक्षण अर्थात् सूखा भूजा चना भी वगैर चौकेके नहीं खाते, और कितनी भी दरिद्रता हो जाय और बहुत कुछ धन वा यश का लोभ दिखलावे तो भी अपने आचार को जल्दी नहीं छोड़ते, और वहां के ब्राह्मण और क्षत्रियों की दो श्रेणी होती हैं अव्वल पंक्ति दोयम त्रुटि उनमें अव्वल उत्तम समझे जाते हैं क्योंकि पंक्ति ब्राह्मण का विवाह आदि सम्बन्ध यदि त्रुटि ब्राह्मणों में होवे तो वह पंक्ति ब्राह्मण भी त्रुटि की गणना में हो जाता है अर्थात् अपनी गणना से च्युत हो जाता है ॥ ४ ॥

यत्रस्थास्त्रुटिता अपि द्विजवरा देशान्तरे निर्गता
विद्याचारविवेकधैर्यविनयानन्याधिकं बिभ्रते ॥
नो वा स्वाधम जाति जात मनुजै यौनादि संबन्धनं
लोभाद्यैरपि कुर्वतेऽतिविपदो मैलाः कुली न प्रियाः॥५॥

और वहां के त्रुटि ब्राह्मणों की भी यही चाल है कि प्रायः अपने से नीच कोटि के लोगों से संबन्ध नहीं करते और भोजनादि विषय में भी वैसाही आचार रखतेहैं जैसा कि पंक्ति ब्राह्मणों का होता है, पंक्ति ब्राह्मणों के माने यह मालूम पड़ता है कि मनुस्मृति आदि में श्राद्ध आदि के प्रकरण में जहाँ उत्तम ब्राह्मण गिनाये हैं वहाँ पंक्ति पावन ब्राह्मण सब से उत्तम लिखे हैं तो सम्भव है कि उन्हीं पंक्ति पावन ब्राह्मणों को लोग में पंक्ति ब्राह्मण कहते हों क्योंकि यह पुरानी चाल है कि नाम के टुकड़े से पूरा नाम समझा जाता है। और व्याकरण में भी एक वार्तिक है कि (विनापि प्रत्ययं पूर्वोत्तर पद लोपो वक्तव्यः) तो इससे भी यह बात सिद्ध होती

है कि (नामैकदेशे नामग्रहणं) जैसे कि राम से रामचन्द्र कृष्ण से कृष्णचन्द्र और भीम से भीमसेन इत्यादि, पंक्ति ब्राह्मणों का विवाह आदि विषय में ऐसा व्यवहार है कि सिवाय पंक्ति ब्राह्मण के और किसी त्रुटि ब्राह्मणों से विवाहादि संबन्ध नहीं करते और भोजनादि भी दूसरे के हाथ का पक्वान्न पूड़ी आदि भी नहीं खाते, यदि कोई पंक्ति ब्राह्मण धनादि लोभ से त्रुटि ब्राह्मण की कन्या से विवाह कर लेवे तो उसी दिन से वह पंक्ति ब्राह्मण की श्रेणी से खारिज हो के त्रुटि ब्राह्मण की श्रेणी में गिना जाता है और फिर वह वा उसके वंश धर पंक्ति ब्राह्मणोंकीगणना में किसी तरह कदापि नहीं हो सकते, वल्कि इसी से क्रमशः पंक्ति ब्राह्मणों की गणना कमती ही होती जाती है, यद्यपि वर्तमान समय में उनमें विद्या आदि वहुत कम हो गई है तथापि भोजन व विवाह आदि के प्राचीन व्यवहारों को वड़ी दृढ़ता के साथ वे पकड़ रक्खे हैं ॥ ५ ॥

यज्जाताः शिरनेतिवंशमणयः सत्क्षत्रियाः पङ्क्तिजा
नो देशान्तर जात भूसुरवर स्पृष्टान्न पानादिकम् ॥
विस्रब्धं परिगृह्णते तदुचिताचाराद्यवोधाद् भयाद्
धर्मस्यापि, समस्त भूपरिसरे सा किं पवित्रा न भूः॥६॥

उस देश के सिरनेति नामक क्षत्रियवंश भी दो तरह के होते हैं एक तो पंक्ति (पंक्ति पावन) और दूसरे त्रुटि सो उन लोगों की भी रीति खान पान में ब्राह्मणोंहीके समान है अर्थात् पंक्ति क्षत्रिय त्रुटि क्षत्रियों के साथ भोजन या विवाहादि संबन्ध यदि करें तो वह अपनी पंक्ति गणना में से बाहर होके त्रुटि गणना में हो जाते हैं, सुना जाता है कि पंक्तिब्राह्मण पंक्ति क्षत्रियों के हाथ की पक्की रसोई (लड्डूपूड़ी

आदि) खाते हैं और त्रुटि ब्राह्मण के हाथ की वह भी नहीं खाते, और पंक्ति क्षत्रिय ब्राह्मणों के हाथ की कच्ची रसोई (भात दाल आदि) भी खाते हैं किन्तु त्रुटि क्षत्रिय के हाथ की पक्की भी रसोई नहीं खाते तो यह सब बातें यदि सत्य हैं तो बहुत ही ठीक हैं पर पंक्ति ब्राह्मण जो त्रुटि ब्राह्मणों को पंक्ति क्षत्रियों से निकृष्ट श्रेणी में समझते हैं इसका अभिप्राय क्या है यह वे ही लोग जान सकते हैं क्योंकि यह भी देखा सुना जाता है कि बहुत से त्रुटि ब्राह्मणों का भोजनादि व्यवहार व आचार विचार किसी तरह पंक्ति ब्राह्मणों से कमती नहीं है बल्कि किसी किसी विषय में चढ़ा बढ़ा है सो भी वह आचार विचार किसी खास व्यक्ति ही का नहीं बल्कि देश के देश उसी मर्यादा सूत्र में बधे हुये हैं जैसे कि जिला सूबे अवध सुलतापूर परतापगढ़ जौनपुर आजमगढ़ मिरजापूर प्रयागराज फैजाबाद रीवां आदि के जो त्रुटि ब्राह्मण हैं उन लोगों का व्यवहार प्रायः बहुत ही स्वच्छ है, हां बनारस गाजो-पूर बलिया आरा छपरा पटना आदि पूर्व प्रान्त के जो सरयू पारी त्रुटि ब्राह्मण हैं वे पक्की रसोई के विषय में ज्यादे छूत छात को चित्त से पसन्द नहीं करते किन्तु समाज में उस व्यवहार का पालन अवश्य करते हैं, लेकिन उनका भी विवा-हादि संबन्ध दक्षिण उत्तर पश्चिम सभी प्रान्त के सरयूपारी ब्राह्मणों में यथा योग्य होता है, सारांश यह है कि देश के बदल जाने से भी पंक्ति और त्रुटि की मर्यादा यदि खान पान व विवाह आदि की रीति न बदले तो बनी रहती है और स्वदेश में रह के भी यदि खान पान आदि का व्यवहार बदल जावे तो पंक्ति त्रुटि आदि की सभी मर्यादा अवश्य बदल जाती है इत्यादि ॥ ६ ॥

तत्रत्योत्तमविप्रवंशतिलकः प्राग्जन्मपुण्यावलीं
लोकेषु प्रथयन् निजां समजनि श्रद्धालुमुख्य श्रुतौ ॥
मेधावान् धृतिमान् विवेक कुशलः सद्धर्म भीरुःसदा–
चारादच्युतचित्तवृत्तिरनिशं सत्तत्त्वचिन्तारतः ॥ ७ ॥

उसी देश में एक किसी उत्तम ब्राह्मण के घर में एक महाशय ऐसे पैदा हुये कि जिनकी वैदिक मार्ग में श्रद्धा व बुद्धि धैर्य विवेक कुशलता धर्म भीरुता सर्वदा सदाचार से चित्त का न हटना और आत्मतत्व चिन्ता में निरत रहना इत्यादि गुणों से पूर्व जन्म का पुण्य राशि विस्पष्ट मालूम होता था ॥ ७ ॥

बाल्येऽप्यस्य मनो न चञ्चलतरं नो वा कठोरादरा
वाग् दृष्टिश्चटुला रसादिविषये लोभस्य लेशः क्वचित् ॥
तारुण्येऽपि शम प्रधानममलं चित्तं न चित्रं तु तत्
सर्वं प्राक्तन पुण्यवैभववशात् किंकिं न संभाव्यते ॥ ८ ॥

यद्यपि बाल्यावस्था में भी उनके मन में ईषत भी चञ्चलता न थी और न बाणी में भूल से भी कठोरता पाई गई और दृष्टि में चपलता का लेश भी न था और युवावस्था में भी चित्त की निर्मलता और शान्ति प्रशंसनीय थी तथापि उक्त बातों में आश्चर्य्य न करना चाहिये क्योंकि पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार किसी बात का असम्भव नहीं ॥ ८ ॥

यद्यप्यस्य विवेक वैभव वशाद्र रागान् न लोभादिना
गार्हस्थ्येऽभिरतिस् तथापि जननीतातानुरोधादसौ ॥
गार्हस्थ्योचितदानदेवयजनादीन् शास्त्रविध्यादृतान्
द्वात्रिंशच्छरदश्चकार विधिवत् सद्धर्मशास्त्रप्रियः ॥ ९ ॥

यद्यपि विवेक की अधिकता के कारण गार्हस्थ्य आश्रम के सुखादिकों में प्रीति या लोभ का लेश भी इनको नहीं था तथा-

पि माता पिता आदि की यथोचित सेवा आदि के लिए बत्तीस बरस तक बड़ी विधि से दान होम यज्ञ आदि गृहस्थों के धर्मों को भरपूर किया क्योंकि ये धर्मशास्त्र का बहुत कुछ अनुरोध रखते थे ॥ ९ ॥

उत्पाद्यात्मजमेकमेष गृहिणीं संतोष्य वाग्भिर्महा
वाक्यार्थं प्रवणा भिरात्मनिरत श्रीयाज्ञवल्क्योपमः ॥
वैफल्यं कलयन् स्थितौ निजगृहे विक्षेपमध्यात्मन-
स्तत्त्वार्थावगतौ निरन्तरसमाधाने ततो निर्ययौ ॥ १० ॥

जब कि इनको एक पुत्र पैदा हो गया तब इनने यह स्थिर किया कि अब गृहस्थ आश्रम में रहने से कोई लाभ नहीं इतना ही नहीं किन्तु आत्मज्ञान व चित्त की एकाग्रता में क्षण क्षण अनेक प्रकार के विक्षेप (विघ्न) ही पड़ते हैं अतएव किसी दूर देश में जाना हितकारी होगा, तो इन्हीं सब अपने विचारों को जैसे कि याज्ञवल्क्य मुनिने अपनी पत्नी को समझाया था उसी तरह इनने भी वैदिक महा वाक्यों के अर्थों के द्वारा अपनी पत्नी को समझाया और जब कि उसका पूरा पूरा संतोष हो गया तब अपने घर से विदा हुये ॥ १० ॥

भूचन्द्राङ्ककलानिधान गणितेऽब्दे वैक्रमे कार्त्तिके
निर्गत्यैष पवित्रमूलफलभुक् क्षामः पदातिर्गृहात् ॥
तीर्थेष्वाप्लवनादिभिर्निजमनोवाक्काय संशोधनं
वैधं पालयितुं प्रवृत्त इव संशुद्धोऽपि शिक्षां दिशन् ॥ ११ ॥

यद्यपि इनका शरीर मन वाणी सभी इतने पवित्र थे कि तीर्थ यात्रा आदि की कोई भी आवश्यकता न थी तथापि शास्त्र की मर्य्यादा का पालन और अज्ञानी लोगों को शिक्षा देना आदि प्रयोजन के अनुरोध से संवत् १९११ के कार्तिक मास में अपने घर से निकल के तीर्थ यात्रा का आरम्भ इनने

किया। यद्यपि उनका शरीर अत्यन्त दुर्बल था तथापि उन्होंने यात्रा पैदलही किया ॥ ११ ॥

आदावात्मगृहान्तिकस्थसरयूमाप्लाव्य तत्तीरगे
साकेते स्थिरतामुपेत्य विधिना मासं प्रयागं ययौ ॥
तत्राप्युग्रतपोदृढव्रतमना भिक्षाप्तकन्दादिभुङ्
मासांस्त्रीन् विगमय्य रामचरितोऽयं चित्रकूटं ययौ ॥ १२ ॥

तो सब से पहिले अपने मकान के समीपही सरयू नदी में स्नान करके उसी के किनारे एक मास अयोध्या में विधिवत् निवास करके तो प्रयागराज गये वहां उनका तीन महीने तक बड़ा कठिन तपस्या में ऐसा दृढ़ संकल्प था कि सिवाय भिक्षा से प्राप्त कंद मूल फल के और कुछ नहीं खाया और प्रति दिन विधिवत् त्रिवेणी स्नान आदि करते थे, बाद चित्र-कूट को गये ॥ १२ ॥

सम्यक् तत्र समस्ततत्तदवनीकालोचितं साधयन्
ब्रह्मावर्तमगाद् व्यतीत्य सुकृतं मासद्वयं क्षीरभुक् ॥
पूर्णं मास चतुष्टयं स्थिरमतिः कृच्छ्रादिभिर्वर्त्तयन्
गङ्गातीर उवास रामनिरतो वाल्मीकि तुल्यो वशी ॥ १३ ॥

वहां के देश कालोचित तीर्थ विधि को दो महीने तक थोड़ा सा दूध एक वक्त पीकर समाप्त किया बाद ब्रह्मावर्त (बिठूर) को गये वहां चार महीने तक गंगा के तीर श्री बाल्मीकि मुनि के आश्रम में कृच्छ्र चान्द्रायण आदि कठोर व्रतों को करते हुये वहां की तीर्थ विधि को यथोचित समाप्त किया ॥ १३ ॥

एवं पुष्करमुख्य तीर्थ निवहान् संप्राप्य पद्भ्यां क्रमात् ।
तत्तत्तीर्थवरोचितानि विधिवत् कर्माणि कृत्वा शनैः ॥
संप्रापद् बदरीवनं तदुचितं तीव्रं तपः सचरन् ।
षण्मासं स्थिरधीरुवास विजनेऽयं शाकपत्राशनः ॥ १४ ॥

इसी तरह क्रमशः पुष्कर आदि बहुत से मुख्य मुख्य तीर्थों में जाके वहां के तीर्थ विधि यथोचित समाप्त करते हुये बदरिकाश्रम में पहुंचे और वहाँ छ महीने तक निर्जन वन में बड़ी कठोर तपस्या करते हुए केवल साग पात खाय के तीर्थ विधि को समाप्त किया ॥ १४ ॥

तस्मादप्यतिपावनान्निरगमत् प्राप्तुं स लोकोत्तरं
मध्येमार्गमुपास्य पूर्णविधिना तीर्थानि गच्छन् कृती ॥
प्रापत् पूर्वपयोनिधेस्तटगतं नीलाचलं वत्सरं
सावित्रीं प्रजपन्नुवास विधिना तत्रापि शाकाशनः ॥ १५ ॥

अत्यन्त पवित्र उस बदरिकाश्रम से चलके रास्ते में बहुत से तीर्थों में यथायोग्य निवास व यथोचित विधि करते हुए पूर्व समुद्र के किनारे नीलाचल (जगन्नाथपुरी) में पहुंचे और वहां एक बरस तक केवल शाक अहार करते गायत्री का अनुष्ठान व तीर्थ विधि को समाप्त किया ॥ १५ ॥

एवं हायनपञ्चकेन विधिवत्तीर्थान्युपास्यात्मन—
स्तातादेः पितृलोकपोषणकरान् पिण्डान् गयादीददत् ॥
प्रापच्छ्रीमदनान्तकस्य नगरीं वाराणसीं यां श्रुति—
र्व्याचष्टे शिवरूपिणीं सुरनदीपूराविमुक्तां सदा ॥ १६ ॥

इस तरह से प्रायः पांच बरस में तीर्थ विधि को समाप्त करते गया जी के पिंडदान आदि तीर्थ विधि से समस्त पितरो का उद्धार करते श्री कामदेव को पलक मात्र से दग्धकर देने वाले जो श्री महादेवजो उनकी प्राण के समान प्रिया जो वाराणसी (श्री काशीपुरी के असी वरणा का मध्य भाग) वहां पहुंचे, यह वही काशीपुरी है कि जिसका वर्णन वेदों में साक्षात् शिवस्वरूप करके लिखा है, और इसी काशी का नाम अविमुक्त भी वेद आदि ग्रन्थों में लिखा है उसका अभिप्राय यह मालूम पड़ता

है कि इस पुरी को देवता व मनुष्य आदि अच्छे लोग कदापि छोड़ना नहीं चाहते और न यह छोड़ने के लायक है भी, सो यह सब बात काशी खंड के प्रारम्भही में अगस्त्य मुनि की कथा देखने से साफ साफ मालूम होती है, और भी बहुत से ग्रन्थों में देखने से यह बात मिलेगी, और यह बात तो प्रत्यक्ष ही है कि गंगा जी इस पुरी को बहुत दिनों से नहीं छोड़ती हैं अर्थात् और जितने नगर गंगा के किनारे पर हैं उनसे प्रायः हट के ग्रीष्म ऋतु में गंगा की धार बहती है वह बात काशी में अभी तक देखने सुनने में नहीं आई है, शायद किसी ग्रन्थ में यह लिखाभी है किगंगाजीने जब इस बातका इकरार किया है तब उनको काशी में प्रवेश करने की आज्ञा मिली है इत्यादि ॥ १६ ॥

काशीरुद्रतनूः शिवा विलसति ज्ञानं यया देहिना—
मित्युक्तं निगमे किमन्यदधिकं वक्तुं क्षमः स्याज्जनः ॥
यत्र प्राणवियोगकालजपरब्रह्मोपदेशाच्छिवः
कीटादीनपि साधनैर्विरहितान् मुक्तान् करोतीत्यपि ॥१७॥

यह काशी साक्षात् शिव जी का स्वरूप है जिससे कि संपूर्ण प्राणियों को ज्ञान लाभ होता है, और यहां जो जीव मरते हैं उनको उसी समय शिव जी ऐसा उपदेश देते हैं कि जिससे सर्व साधन रहित कीट पतंग आदि भी तत्काल ही मुक्त हो जाते हैं इत्यादि काशी की महिमा वेदों में लिखी है तो इससे अधिक कोई भी क्या कह सकता है ॥ १७ ॥

स्थित्वा यत्र दिनत्रयं विधिवशात् कुत्रापि जीवो मृतः ।
स्यात् सोऽप्यत्र परत्र जन्मनि ततो मृत्वा भवेन् मुक्तिभाक् ॥
पुर्यो यद्यपि सप्त मुक्तिफलदा अन्या अयोध्यादयः ।
प्रापय्यात्र विमुक्तिदानतु पुनः स्वातन्त्र्यतः प्राणिनाम् ॥१८॥

काशी में तीन दिन निवास करके जो जीव अन्यत्र भी कहीं मरते हैं वे दूसरे जन्म में काशी में मरके अवश्य मुक्त होते हैं, यद्यपि अयोध्या आदि सातो पुरियों में मरने से मुक्ति होती है ऐसा लिखा है तथापि उसकी व्यवस्था ऐसी लिखी है कि और पुरियों में मरने से दूसरे जन्म में काशी प्राप्त होती है तो उससे जीवों को मुक्ति होती है इत्यादि ॥ १८ ॥

येऽप्येनामन पेक्ष्य मुक्ति जनकास्तीर्थाः प्रयागादय
स्ते सर्वेनिवसन्ति पञ्चदशमिः स्वाभिः कलाभिस्त्विह ॥
स्वस्थाने 'कलयैक येत्थमखिला रामेश्वराद्यास्सुरा
न द्यः पुण्यतमाः सरांसि मुनयः सिद्धादयः सागराः ॥ १९ ॥

प्रयागराज आदि कई तीर्थों के विषय में ऐसा भी लिखा है कि विना काशी प्राप्त किये भी स्वतन्त्र मुक्ति दे सकते हैं, परन्तु वे ही नहीं किन्तु सभी उत्तम पदार्थ (सेतुवन्ध रामेश्वर आदि बड़े बड़े तीर्थ नर्मदा आदि बड़ी बड़ी नदी पुष्कर आदि बड़े बड़े तालाव और वशिष्ठ आदि बड़े बड़े मुनि और सिद्ध और योगी और सातो समुद्र इत्यादि) एक कला से तो अपने अपने स्थान में हैं और पन्द्रह पन्द्रह कला से काशोवास करते हैं इत्यादि सभी के विषय मे लिखा है ॥ १९ ॥

अद्याप्यत्र निवासिनो वुधवराः संन्यासिनः कारवो
दासाद्या वणिजः कुकर्मनिरता धूर्ता विटा दाम्भिकाः ॥
वैद्यास्तन्त्रविशारदाः कविवरा देवप्रिया याज्ञिकाः
स्वे स्वे कर्मणि देव तुल्यमतयो दृश्यन्त एव स्फुटम् ॥२०॥

आजतक भी काशीमें यहवात प्रत्यक्ष देखपड़ती है कियहाँ केनिवासी पण्डित संन्यासी कारीगर खिजमतगार कुलीवनिये चोरजारगिरहकट नौसरियेबदमाश व्यभिचारी ठगवैद्यतान्त्रिक मान्त्रिक कवि भक्त यज्ञ कराने वाले आदि सभी फिरकेके लोग

अपने अपने कामोंमें ऐसे चतुर हैंकि जैसेऔर स्थानोंमें खोजने से कदाचित् मिलेंगे ॥ २० ॥

इत्याद्युक्तं स्कन्दमुख्यैः पुराणै—
र्देवप्रष्ठैर्व्यासमुख्यैर्मुनीन्द्रैः ॥
यत्तत्र स्यान्नो विवादः कुशाग्र—
बुद्ध्यात्रत्यं पश्यतां वस्तु सर्वम् ॥ २१ ॥

इत्यादि बहुत सी बातें स्कन्दपुराण आदि में व्यास आदि मुनियों ने कहीं है तो यदि विचार पूर्वक सूक्ष्म बुद्धि से यहाँ के पदार्थ देखे भाले जाँय तो इस विषय में किसी को प्रायः शंका या बहस न होगी ॥ २१ ॥

तत्तत्सङ्गात्तत्तदूहां वितत्य
सर्वेषां या तत्तदज्ञान हन्त्री ॥
तत्तज्ज्ञानात् प्राणिनां शंविधत्ते
सा किं काशी नो शिवा शन्तमास्तु ॥ २२ ॥

काशी को कल्याण स्वरूप व उत्तम सुख स्वरूप जो वेद आदि में लिखा है सो ठीकही है क्योंकि तत्तद् विषय के ज्ञान होने से तत्तद् विषय के अज्ञान जब नष्ट होते हैं तब अवश्य जीवोंको सुख होताहै क्योंकि दुःखका कारण जहाँ तक विचारा गया है तो सिवाय अज्ञान के और कुछ स्थिर नहीं होता एवं सुख का भी कारण सिवाय ज्ञान के और नहीं कहा जाय सकता, अब इस जगह बहुत लोगों को यह शंका होगी कि सुख वा दुःख के कारण तो रूप रस आदि विषय वा इन्द्रिय व मन इत्यादि प्रत्यक्ष सिद्ध हैं तो उसमें ज्ञान और अज्ञान को सुखादि के कारण मानने की क्या आवश्यता है इत्यादि, तो इसका संक्षिप्त उत्तर यह है कि वे रूप रस आदि विषय व इन्द्रिय व मन व उनके परस्पर सम्बन्ध इत्यादि

जो सुख दुःख के कारण प्रसिद्ध हैं वा प्रत्यक्ष सिद्ध हैं उन्हीं को यदि विचार के देखिये तो यही सिद्ध होता है कि विना ज्ञान के वे सब रूप रस आदि विषय आदि कदापि सुख दुःख के कारण नहीं हो सकते क्योंकि जब तक रूप आदि विषयों का ज्ञान ही नहीं है तब तक उन से क्या सुख दुःख आदि पैदा हो सकता है तो अर्थात् यही सिद्ध हुआ कि ज्ञान के सिवाय और जो विषय आदि कारण मालूम होते हैं वे केवल नाम मात्रहैं और मुख्य कारण ज्ञानहीहै जैसेकि गोवर्धन पर्वतके उठानेमें सभीग्वाल वालोंने लकुठी लगाईथी औरउसेवे लोगउसके उठनेका कारणभी समझेथे पर उसके उठनेकाप्रधान कारण वाकारण जो कुछ कहा जाय सो सिवाय श्रीकृष्ण भगवान् के प्रतापके और कुछ नहींथा इसी तरह सिवाय ज्ञानके सुख आदि के कारण और विषय आदि नाम मात्रही हैं तो काशी में रहने से पूर्वोक्त तरह २ के लोगों का संग अवश्य ही होता है तो उनके संग से जिस २ विषय की ज्ञान वृद्धि होती है उस उस विषय के अज्ञान भी अवश्य दूर होते हैं तो उन उन विषयों का पूर्ण सुख लाभ होता है, उन उन विषयों के ज्ञान और अज्ञान को सुख और दुःख के कारण होने में दृष्टान्त यह है कि जैसे कोई स्त्री डोले के भीतर परदे में चली जाती है तो उसके देखने की इच्छा यदि हुई तो जब तक उसे न देखेंगे तब तक क्लेश रहेगा और जब उसे देख लेवेंगे तो उसके चाक्षुष ज्ञान से एक तरह का सुख होगा तो इससे यह बात स्पष्ट ही सिद्ध होती है कि अज्ञान दुःख का कारण और ज्ञान सुख का कारण है इत्यादि ॥ २२ ॥

तत्तद्वस्त्वज्ञानदुःखे निमग्नं
श्रोत्रं वद्धं तत्रतत्रामनन्ति ॥

एवं तत्तद्वस्तुतत्त्वावबोध—
सौख्यं तत्तन्मुक्तिरूपं प्रसिद्धम् ॥ २३ ॥

जिन जिन वस्तुओं के अज्ञानरूपी कीचड़ में चित्त फंसा रहता हैं वेही विषय उस चित्त के दृढ़ वन्धन कहे जा सकते हैं, और जिन जिन विषयों के ज्ञान रूप प्रकाश से वे वन्धन नष्ट होते हैं उन उन विषयों से वह चित्त मानो मुक्त होता है, खुलासा मतलब यह है कि पिछले श्लोक में ज्ञान को सुख का कारण और अज्ञान को दुःख का कारण स्थिर कर चुके तो दुःख के सिवाय बन्धन और सुख के सिवाय मुक्ति और क्या कह सकते हैं इत्यादि ॥ २३ ॥

वस्तूनां यस्तत्त्वबोधः समेषाम्
पूर्णं ज्ञानं निर्विशेषं समोक्षः ॥
तत्संसिद्धिः काशिवासाद् ध्रुवंस्या-
दित्येषा सत्सङ्गतो मोक्षदात्री॥ २४ ॥

इसी तरह क्रमशः सभी वस्तुओं का अज्ञान नष्ट हो के पूर्ण ज्ञान हो जाता है तो उसी ज्ञान को निर्विशेष मोक्ष कहते हैं, सो काशी में होना अत्यन्त सुलभ है ;क्योंकि यहां सभी विषय के पूर्ण ज्ञाता निवास करते हैं तो उनके संग से यदि क्रमशः सभी विषय के अज्ञान दूर हो जावें तो मोक्ष होने में क्या बाकी रहा, सारांश यही हुआ कि सत्संग से सर्व विषय का अज्ञान दूर होना और क्रमशः सर्वज्ञ हो जाना इसी का नाम मोक्ष है क्योंकि उस अवस्था में किसी विषय के क्लेश का लेश भी बाकी नहीं रहता सो उसकी सुलभता जैसी काशी में पाई जाती है ऐसी अन्यत्र नहीं देखी सुनी जाती ॥ २४ ॥

एतेनोक्तं पाविनां काशिकैषा
तुल्या ज्ञेया कीकटेनेति यत्तत् ॥

थुक्तं यस्माद् वस्तुतत्त्वानभिज्ञ-
ग्रावादीनां काशिवासान्न मुक्तिः ॥ २५ ॥

इसी पूर्वोक्त रीति से उन वाक्यों का भी लगाना सहज होगा जिन में कि यह लिखा है कि पापियों के लिये काशी मुक्ति की देने वाली नहीं हैं किन्तु उनके लिए मगध भूमि के समान नरक ही की देने वाली है इत्यादि, इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग चिरकाल तक काशी में रह के भी सत्संग से रहित हो के केवल दुःसंग ही को बढ़ाते हैं तो उनको क्रमशः अज्ञानही की वृद्धि होती है तो उनके मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं है जैसे कि काशी के काष्ठ पत्थर आदि जड़ वर्गों की कदापि मुक्ति सम्भावना नहीं, क्योंकि जड़ता के माने सिवाय अज्ञान के और कोई चीज़ नहीं है तो जो पूर्ण अज्ञानी हैं उनसे और काष्ठ पत्थर से क्या अन्तर है इत्यादि ॥ २५ ॥

मृद् ग्रावादिव्यूहरूपा न काशी
किं तु ज्ञानव्यूहरूपैव सेष्टा ॥
नोचेत् सर्वा ज्ञानिनां काशिका भू-
रित्याद्युक्तं नैगमं नो घटेत ॥ २६ ॥

बहुत से साधारण लोग इसी मट्टी पत्थर के समूह ही को काशी समझते होंगे परन्तु विचार करने से यही सिद्ध होता है कि ज्ञान का जो समूह वही काशी का मुख्य स्वरूप है क्योंकि यदि ऐसा न मानें तो जिन वाक्यों में यह लिखा है कि ज्ञानियों के लिए सभी भूमि काशी ही है वे वाक्य कैसे प्रामाणिक हो सकते हैं क्योंकि काशी के मट्टी पत्थरों की राशि सकल भूमि में कैसे पहुँच सकती है ॥ २६ ॥

देशांशादेः पूर्वताद्या उपाधा—
वारोप्यन्ते मृज्जलाद्येषु धर्माः ॥

एवं तत्त्वाज्ञाननाशाद्युपाधौ
काशीत्वादि प्रस्तरादौ प्रसिद्धम् ॥ २७ ॥

यद्यपि व्यवहार दशा में काशी नाम उसी प्रदेश का है कि मध्यमेश्वर (जो कि विश्वेश्वर गंज के पास हैं) से देहरी विनायक (जो कि पञ्चक्रोशी के रास्ते में डेहरिया विनायक के नाम से प्रसिद्ध हैं) तक सूत नाप के गोलाकार घुमाने से जितनी भूमि बीच में पड़ती है प्रायः दस कोस के गर्भ के लग भग जो भूमि है, परन्तु यह व्यवहार मुख्य नहीं है किन्तु औपाधिक (दूसरे पदार्थ के धर्मों का दूसरे पदार्थों में आरोप करने से) है जैसे कि पूर्व पश्चिम आदि शब्दों का मुख्य अर्थ दिशा देश काल हैं पर व्यवहार में उनके अर्थ पर्वत वृक्ष गृह आदि भी होते हैं तो उसमें यही कारण है कि दिशा देश आदि में रहने वाले जो पूर्वत्व आदि धर्म हैं उनका पूर्व आदि दिशा में स्थित जो वृक्ष आदि उनमें आरोप (भ्रम वा मिथ्या ज्ञान) होता है, इसी तरह किसी लड़के में क्रूरता आदि गुण अधिक देखने से उसमें सिंहत्व धर्म का आरोप करके यह लड़का सिंह है ऐसा व्यवहार होता है इसी तरह यद्यपि काशी पद का मुख्य अर्थ ज्ञान का समूह ही है पर उस ज्ञान समूह की सुलभता पूर्वोक्त भूमि में है अतएव उस भूमि के मिट्टी पत्थरोंमें काशीपदकाव्यवहारप्रसिद्ध हुआ है ॥ २७ ॥

तत्तद्वस्तुत्कृष्टमर्मज्ञसङ्गात् ।
तत्तत्तत्त्वं ज्ञायते काशिवासात् ॥
एवं सर्वाज्ञाननाशात् क्रमेण ।
मुक्तिः सिद्धा नात्र किंचित् परोक्षम् ॥ २८ ॥

काशी में निवास करने से अनेक विषय के उत्तम ज्ञानियों का सत्सङ्ग यदि किया जायगा तो अवश्य उन उन विषयों का

अज्ञान नष्ट होगा और ज्ञान पैदा होगा, तो इसी तरह से क्रमशः जब सभी विषय का अज्ञान नष्ट हो के और ज्ञान पैदा हो जायगा तो फिर इससे अधिक मुक्ति क्या चीज है इत्यादि बातें तो प्रत्यक्ष ही हैं ॥ २८ ॥

येषां पक्षे बुद्धिवृत्तिप्रवाह-
रोधो मोक्षो बुद्धिनाशोऽथ वा सः ॥
तेषां योगे कापिलादौ स्थितानाम-
प्येषा स्यान् मुक्तिदात्रीति सिद्धम् ॥ २६ ॥

पातंजल दर्शन में बुद्धि के तरङ्ग की धारा जो स्वाभाविक सदा चला करती है उसके बन्द कर देने ही को मोक्ष कहते हैं, एवं कापिल दर्शन में बुद्धि के नाशही को मोक्ष कहते हैं तो उनके मत से भी काशी मुक्ति की देने वाली है यह बात युक्ति से सिद्ध होती है ॥ २६ ॥

सर्वेषां स्वज्ञानगम्ये प्रसिद्धा
बुद्धेर्वृत्तिर्धीमतां पामराणाम् ॥
एवं वस्त्वाकस्मिकं बुद्ध्यगम्यम् ।
दृष्ट्वा बुद्धेर्नाशरोधौ प्रसिद्धौ ॥३०॥

वह युक्ति यह है कि जो पदार्थ जाना हुआ रहता है अथवा जानने के योग्य रहता है उन्हीं पदार्थों के विषय में सभी की बुद्धि वा बुद्धि के तरंग की धारा चलती है और जो पदार्थ ऐसे हैं कि जिनमें बुद्धि आदि का कुछ भी प्रवेश नहीं है उनके विषय में बड़े भारी बुद्धिमान् वा साधारण जन सभी के बुद्धि के तरंग की धारा बन्दही हो जाती है तो उसी को बुद्धि का नाश भी कह सकते हैं, तो उस अवस्था में उस पदार्थ को सिवाय आकस्मिक (अद्भुत वा अचांचक) के और कुछ नहीं कह सकते ॥ ३० ॥

२

काशीस्थेष्वाकस्मिकत्वावबोधः
सूक्ष्मं वस्तुष्वीक्षमाणस्य न स्यात् ॥
कस्य क्वापीत्यस्य संभावनैव।
नास्तीत्येषा तन्मते मोक्षदात्री ॥ ३१ ॥

काशी के वस्तुओं को देख के यदि सूक्ष्म रीति से विचार करें तो सभी जगह अचांचकपनाही मालूम पड़ता है तो ऐसी अवस्था में सभी की बुद्धि का कुन्द होना सम्भावित है तो फिर पूर्वोक्त रीति से काशी का मुक्ति दातृत्व सिद्ध ही है ॥३१॥

दिनत्रयं य स्थितिमत्र लब्ध्वा
देशान्तरं निर्गतवान् मनुष्यः ॥
अत्रत्यवस्तूनि स यावदायु-
र्न विस्मरेदन्यविलक्षणत्वात् ॥ ३२ ॥

जो मनुष्यतीनदिनयहाँरहकेदेशान्तर मेंभी जावेगावहयावत् जीवयहाँके वस्तुओंको कदापि भूलनहींसकता क्योंकि यहाँ की वस्तु और स्थानों के वस्तु से बहुत विलक्षण हैं ॥ ३२ ॥

ततः शरीरच्युतिकालजेन
दृढानुरागेण लभेत काश्याम् ॥
उत्पत्तिमत्रत्यजनस्य तु प्राक्।
प्रदर्शितैवाशुविमुक्तिरीतिः ॥ ३३ ॥

तब तो देहाँत समय में भी उन वस्तुओं की दृढ़ वासना रहेहीगी उसी के वश से जन्मान्तर में भी वह जीव अवश्य काशी में उत्पन्न होगा तो यदि काशी में उत्पन्न हुआ तब तो उसके मुक्ति होने की रीति पीछे दिखलाही चुके हैं ॥ ३३ ॥

आकर्ण्य काशी महिमानमत्र।
समागतः प्राणवियोग काले ॥

यद्वा निजात्युत्कट पुण्यराशे —
रामुष्मिकात् प्राप्त इहैहिकाद्वा ॥ ३४ ॥

जोकोई काशीके महत्त्वकोसुनके देहान्तकालमें इसजन्मकेया पूर्वजन्मकेपुण्यराशिसेदैवात्काशीमेंप्राप्तहुआ ॥३४॥

कथं चिदप्यत्र समागतस्य
प्राणान्तकालेऽखिलवस्तुतत्त्वम् ॥
प्रागुक्तरीत्यां स्मरतो विमुक्ति-
र्युक्ता न चित्रास्पदतामुपैति ॥ ३५ ॥

तो अवश्य प्राणान्तकाल में यहाँके वस्तुओं की वासना दृढ़ होगी तो उसके मुक्तहोने में भी कोईआश्चर्य नहीं है ॥३५॥

दृढ़ानुरागेण निजेष्टहेतू
नन्यान् समासादयते क्रमेण ॥
ततस्तु सर्वेष्ट निदानमुख्यो ।
दृढ़ानुरागः पुरुषस्य सिद्धः ॥ ३६ ॥

क्योंकि दृढ़ वासना ही सभी वस्तुओं के प्राप्ति का कारण है सो होने से फिर मुक्ति के लाभ होने में और किस कारण की अपेक्षा बाकी रही ॥ ३६ ॥

मनः प्रभृत्यान्तरसूक्ष्मदेहात्
स्थूलस्य देहस्य वियोग इष्टः ॥
प्राणोत्क्रमो नाम न चित्तवृत्ति-
नाशादिरिष्येत तदापि धीरैः ॥ ३७ ॥

मन आदिका समुदाय जोसूक्ष्म शरीर उसका जो दृश्यमान स्थूल शरीरसे अलग हो जाना उसीको मरना कहते हैं, तब तो उस समयमेंभी चित्तके तरंगोंका रहना असम्भवनहीं है ॥३७॥

एवं तु देहावसितेः क्षणेऽयं
यं भावमुक्तः स्मरति प्रकर्षात् ॥

जीवस्तदाप्तेरनुकूलदेहा—
प्राप्नोति रागा इति सुप्रसिद्धम् ॥ ३८ ॥

ऐसी दशा में यही बात सिद्ध होती है कि मरण समय में जीव आत्मा (सूक्ष्म शरीर) को जिस विषय में अत्यन्त उत्कंठा होके स्मरण रूप वृत्ति पैदा हो जाती है उस विषय की प्राप्ति भली भाँति जिस स्थूल शरीर से हो सकती है उसी स्थूल शरीर में पूर्वोक्त उत्कंठा व स्मरण के अनुसार वह सूक्ष्म शरीर प्रविष्ट होता है यह बात युक्ति से सिद्ध होती है ॥ ३८ ॥

काश्यां शरीरं जहतो जनास्या—
अत्येषु वस्तुष्वनुराग वृद्धिः ॥
तत्तत्त्वबोधाय भवेदवश्यं—
तदेत्युपर्युक्तदिशा स मुक्तः ॥ ३९ ॥

काशी में मरने वाले प्राणियों की उत्कंठा यहाँ के अपूर्व वस्तुओं के तत्वज्ञान के लिये बड़े वेग से बढ़ती है तो उसी से सकल वस्तुओं का तत्वज्ञान होता है तो फिर पूर्वोक्त रीति से उसके मुक्त होने में क्या विलम्ब है ॥ ३९ ॥

एवं प्रयागादिषु सर्व तीर्था—
दिपूहनीयं स्वधिया यथेष्टम् ॥
यथासमावेशमिहत्यजन्मा—
न्तरस्थमुक्तयादिनिमित्ततादि ॥ ४० ॥

इसी तरह प्रयाग आदि सभी तीर्थों में जो मुक्ति लिखी है उसकी भी व्यवस्था यथायोग्य एक ही जन्म में वा अनेक जन्म में यथासम्भव मुक्ति होती है इत्यादि बातों को बुद्धिमान लोग अपनी बुद्धि के अनुसार सोच विचार लेंगे ॥ ४० ॥

गङ्गाजल कायिकमानसादि—
शुद्धिप्रदं सर्वजनप्रसिद्धम् ॥

तद् बुद्धिनैर्मल्यविधानहेतो--
मुर्क्ति करोतीति वदन्ति सन्तः ॥ ४१ ॥

गंगाजी के जल से शारीरिक व मानसिक आदि सभी विषय की शुद्धि व उपकार होता है इस बात को हिन्दू मुसलमान इसाई सभी मानते हैं तव तो वस्तु बुद्धि को निर्मल करता है वह मुक्ति का कारण होता है क्योंकि बुद्धि की मलीनता ही बन्धन का कारण है ॥ ४१ ॥

यः संध्ययोर्द्युनदीतटेऽत्र
स्नात्वा स्मरंस्तिष्ठति धीरचेताः ॥
तत्कालजं तस्य सुखं स एव
जानीत नान्योऽखिलवस्तुतत्त्वम् ॥ ४२ ॥

सायंकाल व प्रातः काल जो बुद्धिमान लोग गंगा के तट में बैठ के सम्पूर्ण वस्तुओं के तत्व का चिन्तन करते हैं उस काल के उनके सुख को सिवाय उनके और कोई दूसरा नहीं समझ सकता ॥ ४२ ॥

गङ्गाप्रवाहो यदि भारतेऽस्मिन्
न स्यात्तदैषोऽपि समोऽन्यदेशैः ॥
स्यादेव देशः पुनरेनयाऽयं
सर्वाधिकः सर्वमनोऽभिरामः ॥ ४३ ॥

यदि गंगाधारा इस भारत भूमि में न होती तो कदाचित् इस भूमि की बराबरी दूसरी भूमि भी कर सकती और जब तक की गंगाजी का जल यहाँ विराजमान है तब तक सब भूमियों से यह भूमि उत्तम है क्योंकि गंगाजी का जल सभी जलों से सभी विषय में अधिक गुणकारी है ॥ ४३ ॥

सैषा न यां मुञ्चति धीर धारा
तत्स्थान् पदार्थानखिलान् पुनाना ॥

निजोर्मिसंसक्तमरुद्भिरस्याः
को मुक्तिदत्वे खलु संशयीत ॥ ४४ ॥

यह गंगाजी बड़ी घोर धारा से काशी में बहती हैं और यहाँ के भूमि को कदापि नहीं छोड़तीं और यहाँ के सभी पदार्थों को अपने जल से व अपने तरंगों के वायु से हर वक्त पवित्र करती रहती हैं तो ऐसी काशीमें रहनेवालों की मुक्ति में क्या संदेह है ॥ ४४ ॥

श्रीवैद्यनाथान्तिकवाटिकादि-
र्विचित्रसर्वर्तुसुखप्रदत्वात् ॥
आनन्दपूर्णत्ववनत्वमस्या ।
अद्यापि संदर्शयते विशेषात् ॥ ४५ ॥

वैद्यनाथ जी के पास बड़ी गैबी आदि प्रान्त की जो झाड़ी बगैचे आदि हैं जिनमें कि सभी ऋतु में आनन्द ही है उनके देखने से यह काशी आनन्द वन रूप है यह बात आज तक साफ साफ मालूम पड़ती है ॥ ४५ ॥

गङ्गातटेऽत्युच्चविशालमत्र
केदारनाथोर्जितमन्दिरं यत् ॥
अद्यापि तत्रातुलतूर्यशब्द ।
ब्रह्मापरोक्षं भवति प्रदोषे ॥ ४६ ॥

गंगाजीकेपेन किनारे बडाऊँचालम्बाचौड़ा अत्यन्तदर्शनीय जो केदारेश्वर जी का मन्दिर है वहां सायंकाल आरतीके समय जो बाजे बजतेहैं उनको चित्तदेके सुननेसे शब्द रूपब्रह्मके सुख का अनुभव होता है ॥ ४६ ॥

विश्वेशनीराजनदीपमाला—
ज्योतिर्मयंब्रह्म निरीक्षयतेऽत्र ॥

मित्यं निशायाः प्रहरे द्वितीये ।
देवैर्मनुष्यैरिव सेव्यमानम् ॥ ४७ ॥

विश्वेश्वर की आरती जो रात में होती है उसके देखने से उस समय विचारवान् को ज्योतिस्स्वरूपपरब्रह्म प्रत्यक्ष मालूम पड़ता है और वह पूजन व आरती करनेवाले वैदिकब्राह्मणोंकी मंडलीभीउससमय प्रत्यक्षदेवमण्डलीस्वरूप देखपड़तीहै ॥ ४७॥

तटे जलादौ च सुरापगायाः ।
प्रत्यब्दमावेदयते पुरोऽस्याः ॥
दीपावली कार्त्तिकपञ्चदश्यो ।
ज्योतिर्मयत्वं निगमादिषूक्तम् ॥ ४८ ॥

हर साल कार्तिक की आमावास्यां व पूर्णिमा को जो गंगा जी के किनारे व जल में रोशनी होती है उसके देखने से काशी का जो स्वरूप ग्रंथों में "ज्योतिर्मय" लिखा है उसका अवश्य स्मरण होता है ॥ ४८ ॥

स्यःद् यद्यपीहत्यसमस्तवस्तु—
तत्त्वं गिरा बोधयितुं समर्थः ॥
कश्चित् तथापीक्षणसार्थकत्व—
समीप्सुर्भिर्दश्यतमा पुरीयम् ॥ ४९ ॥

यदि किसी दुनियां में कोई ऐसा बुद्धिमान ठहरे भी कि यहाँ के सब वस्तुओं के तत्व को यथार्थ वाणी के द्वारा समझाय सके तो भी नेत्रों की सफलता के लिये अवश्य इस पुरी को देखना चाहिये ॥ ४९ ॥

एतादृशी मुक्तिपुरीं विहातुं
गङ्गामराः सत्पुरुषादयश्च ॥
यत्रैव शक्ताः सहसा तदेषा—
ऽविमुक्तनाम्ना जगति प्रसिद्धा ॥ ५० ॥

ऐसी मुक्तिपुरी काशी को गंगाजी व देवता लोग व सत्पुरुष आदि कदापि छोड़ नहीं सकते इसी कारण से इस पुरी का अविमुक्त नाम जगत् में प्रसिद्ध है ॥ ५० ॥

सूर्योदयात् प्राग् निजकर्म कर्तुं
गच्छन्ति शूद्रा अवगाह्य गङ्गाम् ॥
विश्वेश्वरादीन् परितोष्य देवान्
गङ्गाजलाद्यैरधुनापि यत्र ॥ ५१ ॥

आज तक भी काशी के कमकर शूद्र कुली आदि में भी प्रायः यह रीति जारी है कि सूर्य उदय के पहिले गंगा स्नान करके गंगाजल आदि से विश्वेश्वर आदि देवताओं की पूजा तथा यात्रा आदि करके तो अपने अपने काम में लगते हैं ॥५१॥

ताम्बूलकारा दधिदुग्धभक्ष्य—
भोज्यादिविक्रेतृवराश्च यत्र
स्वस्वापणस्थाः कमपि स्पृशन्ति
नैवाधुनोज्झन्त्यपि दूरतस्ते ॥ ५२ ॥

यहाँ के तमोली व दही दूध बेचने वाले अहीर व मिठाई आदि बेंचने वाले हलवाई आदि जो प्रतिष्ठित दूकानदार हैं उनकी यह चाल है कि अपनी दूकानों की चीज़ोंको कोई कैसा भी हो उसे छूने नहीं देते किन्तु दूर से उसके हाथ पर सौदा दे देते हैं ॥ ५२ ॥

ताम्बूलवल्लीदलवीटिकादीन्
क्रेतुः करे तन्निहितान् पृथिव्याम् ॥
संगृह्णते गाङ्गजलेन सम्यक्
प्रक्षाल्य तन्मूल्यपणान् स्वभाण्डे ॥ ५३ ॥

कई दूकानदार तो काशी में ऐसे विचारवान् हैं कि गाहक

का दिया हुआ दाम रुपया पैसा आदि अलग रखवा के उसे गंगाजल से धोके तब लेते हैं ५३ ॥

प्राप्यात्र गङ्गामणिकर्णिकादि—
स्नानादिकांस्तीर्थविधीन् समाप्य ॥
मासत्रयेणात्र निवासमैच्छच्
छरीरपातावधिकं स धीमान् ॥ ५४ ॥

वे महाशय काशी में पहुँच के तीन महीने में मणिकर्णिका स्नान पंचकोशी यात्रा आदि यहाँ की तीर्थ विधि को समाप्त करके यावत् जीव यहीं निवास करने की इच्छा किया ॥ ५४ ॥

अथ क्रमेणामलचित्तवृत्ति—
राहारशुद्ध्या तपसाजपाद्यैः ।
निजैहिकामुष्मिकदुःखमूलं
समूलघातं स विहन्तुमैच्छत् ॥ ५५ ॥

यहाँ रहके व्रत जप तप आदि से क्रमशः चित्त की शुद्धि करके अपने सम्पूर्ण इस लोक व परलोक के दुःख व उनके कारणों को जड़ मूल से नष्ट करने की इच्छा किया ॥ ५५ ॥

तत्कारणान्येष धिया विचिन्वन् ।
वैराग्यमेवाङ्गणत् पुरस्तात् ॥
विवेकिनो दुःखकराः समस्ता—
स्तापादिदुःखैर्विषया यदेते ॥ ५६ ॥

तो दुःख आदि के अत्यन्त नाश के कारणों को विचारते विचारते सब के पहिले वैराग्यही को स्थिर किया क्योंकि पतञ्जलि मुनि ने योगसूत्र में ऐसा लिखा है कि जितने विषय हैं वे भी विवेकी पुरुषों के लिये अखीर में सिवाय दुखदायी के कदापि सुखदायी नहीं हो सकते ॥ ५६ ॥

वेगाल्लघोरतीव्रतराद् यथा वा
दोला विधावत्युभयत्र पार्श्वे ॥
तद्वेगवृद्ध्यादिकमेकपार्श्वे-
ऽसंभाव्यमिच्छन् न भवेत् कृतार्थः ॥ ५७ ॥

हिंडोले का यह कायदा प्रसिद्ध है कि जितने ही जोर से उसको चलाना चाहेंगे उतने ही जोर से वह दोनों तरफ बराबर झूलेगा और यदि एक तरफ उसको अधिक बढ़ाया चाहें और दूसरे तरफ कम करना चाहें तो यह बात सर्वथा असम्भव है ॥ ५७ ॥

तथा समस्ता विषयाः समेन
सुखेन दुःखेन च पूर्यमाणाः ॥
तत्रैकवृद्धिं मनुजोऽन्यहानि—
मिच्छन् कृतार्थो भविता कथं सः ॥ ५८ ॥

यही हाल सभी विषयों का है अर्थात् सभी विषयों में सुख और दुःख की मात्रा बराबर ही है तो फिर जो लोग विषयों को बढ़ाय के सुख को बढ़ाना और दुःख को घटाना चाहते हैं तो उनका मनोरथ पूर्ण होना सर्वथा असम्भव है ॥ ५८ ॥

यत्नात् सुखं वर्द्धयितुं स्वकीयं
जनोऽभिलष्यत्यनिशं सुतादीन् ॥
सहैव दुःखस्य सुखेन वृद्धौ
पश्चात् स्वमौढ्यात् परितापमेति ॥ ५९ ॥

मनुष्य आदि जीवों की यह स्वभाविक रीतिहै कि अपने २ सुखके बढ़ानेके लिये बड़े प्रयत्न से धन पुत्र आदि की इच्छा आदि करते हैं और उन विषयोंके प्राप्त होनेपर सुखके साथही

दुःख के वृद्धि का भी जब पूरा पूरा अनुभव होने लगता है तो अपनी ही मूढ़ता से पीछे पश्चातापं भी करते हैं ॥ ५९ ॥

एवं सुखादिष्वनिशं विमूढ़ाः
सुखेच्छयाताननुधावमानाः ॥
क्लिश्यन्ति तत्यागनिगूढ़मार्गा—
ज्ञानादशक्ताः सहसा विहातुम् ॥ ६० ॥

इसी तरह प्रायः अविवेकी लोग सुख और दुख के विषय में विमूढ़ होके सुख की इच्छा से विषयों के पीछे दौड़ते दौड़ते हैरान होते हैं और उन विषयों के छोड़ने का जो गूढ़ रास्ता है उसके न जानने से उन विषयों को एकाएकी छोड़ भी नहीं सकते ॥ ६० ॥

वस्त्वन्तरस्य ग्रहणं विना स्यात्
त्यागः कथंकारमशेष भावे ॥
सदानुरक्तं मनुजस्य चित्त
मेकान्ततो निर्विषयं कथं स्यात् ॥ ६१ ॥

अब यहाँ यह शंका होती है कि चित्त का यह स्वभाव है कि एक क्षण भी बिना किसी विषय के रह नहीं सकता जैसे कि अग्नि का स्वरूप बिना किसी लकड़ी बत्तो आदि आश्रय के पकड़े क्षण भर भी नहीं रह सकता, तो जो चित्त बहुत चिर-काल से घट पट आदि पदार्थ रूप विषयों को पकड़ के उन्हीं में लिपट रहा है उसे जब तक कोई दूसरा विषय न पकड़ाय लेंगे तब तक पूर्व विषयों को छोड़ के उस चित्त के स्वरूप की स्थिति ही का सर्वथा असम्भव है इत्यादि ॥ ६१ ॥

इदंन वाच्यं यत आत्मनिष्ठो
जनस्य चेतः परिणाम आस्ते ॥

सदैव तत्तद्विषयत्वबुद्धि
भ्रान्तिस्तु लोकस्य निजात्मनि स्यात् ॥ ६२ ॥

तो इस शंका का समाधान यह है कि यद्यपि चित्त बिना विषय के नहीं रह सकता यह ठीक है परन्तु उस चित्त का मुख्य विषय आत्मा ही है और घट पट आदि विषय जो मालूम पड़ते हैं वह केवल भ्रम मात्र हैं ॥ ६२ ॥

रज्जुर्यथा सर्पधिया भ्रमेण
जनस्य चित्तेन पुरा गृहीता ॥
तद्भ्रान्तिनाशे भुजगत्वमस्यां
मतौ भवेन् नो विषयः कदाचित् ॥ ६३ ॥

जैसे अंधकार आदि में राहमें पड़ी रस्सी आदि में सर्पका ज्ञान होता है तो उस ज्ञानमें मुख्य विषय रस्सीही कहीजायगी और सर्प आदि विषय जो मालूम पड़ते हैं वह केवल भ्रममात्रहैं, क्योंकि दीप आदि के प्रकाश होनेसे जबवह भ्रममिट जाता हैतो फिर उस ज्ञान में सर्प आदि विषय कदापि नहीं रहते ॥ ६३ ॥

अस्या न वस्त्वन्तरगोचरत्वं
किं त्वाचसर्पादि विशेषमात्रे ॥
सत्यर्थमुख्यां विषयः पुरासीद्
यो रज्जुभागः स पुनस्तथास्ते ॥ ६४ ॥

तो यही सिद्ध हुआ कि प्रकाश होने के पहिले उस ज्ञान में मुख्य विषय जो रस्सी थी वही विषय प्रकाश होने के बाद भी मौजूद है और उस ज्ञान में कोई दूसरा विषय भी पकड़ाया नहीं गया है किन्तु इतना ही विशेष हुआ है कि पहिले अंधकार में भ्रम से उसी ज्ञान में सर्प का स्वरूप जो विषय था वह प्रकाश से अंधकार की निवृत्ति होने पर निकल गया क्योंकि भ्रम का कारण अंधकार ही था ॥ ६४ ॥

घटादिबुद्धावपि तद्वदेव
विशेष्यता स्वात्मन एव नित्यम् ॥
भ्रान्त्या तु तत्तद्विषयावभासो
विशेषणत्वेन विभिन्नरूपः ॥ ६५ ॥

इसी तरह घट पट आदि जितने विषयों के सांसारिक ज्ञान होते हैं उन सब ज्ञानों में मुख्य विषय आत्मा का स्वरूप ही है और घट पट आदि भिन्न भिन्न विषय जो मालूम पड़ते हैं वह केवल भ्रम मात्र है ॥ ६५ ॥

ततस्तु तत्तद्विषयप्रमोष—
मात्रेण तस्या विषयो निजात्मा ॥
वस्त्वन्तरस्याग्रहणेऽपि सिद्धः
शेषान् न वा निर्विषयत्वमस्याः ॥ ६६ ॥

तब तो यदि किसी तरह से भ्रम का कारण जो अविद्या उसकी निवृत्ति हो जाय तो अपने आप घट पट आदि विषय निवृत्त हो जांयगे और बिना किसी दूसरे विषय के पकड़ाये भी वही जो सदा से नित्य आत्मा का स्वरूप सब ज्ञानोंमें विषय है वही बाकी रह जायगा तो अब ज्ञान (चित्त) को निर्विषय मानने की शंका कहाँ बाकी रही है इत्यादि ॥ ६६ ॥

यद्वा सुषुप्त्यादिनिदर्शनेन
धीसंततिर्निर्विषया कदाचित् ॥
स्फुरेत् कदाचिद विषयानुरक्ते—
त्येवं सुधीभिः परिकल्पनीयम् ॥ ६७ ॥

अथवा उस पूर्वोक्त शंका का समाधान काई ऐसे करते हैं कि यह नियम नहीं है कि चित्त वृत्ति सर्वदा किसी विषय को पकड़ के ही रहती है किन्तु कभी विषयों को पकड़ के रहती है और कभी बिना विषय के भी चित्त के तरंग स्वभाः

विक्र उठा करते हैं ऐसा ही मानना उचित है क्योंकि सुषुप्ति (गाढ़ निद्रा) के समय कोई भी विषय नहीं भासित होते तो उस समयकी चित्तवृत्तिको निर्विषय ही कहना पड़ेगा ॥ ६७ ॥

एवं त्वशेषैर्विषयैर्वियुक्त।—
ऽप्येषा चिरं तिष्ठति निर्विशेषम् ॥
का वा क्षतिर्यद् विषयानुरागः
सदातनोऽस्यामुररीक्रियेत ॥ ६८ ॥

तब तो घट पट आदि सब विषयों का त्याग करके सर्वथा निर्विषय चित्त का रहना असम्भव नहीं है तब तो उस में किसी दूसरे विषय के पकड़ाने की आवश्यकता नहीं है किन्तु स्वभाव ही से वह चित्त चिरकाल तक अपने स्वरूप में स्थिर रहेगा इत्यादि ॥ ६८ ॥

पूर्वत्र पक्षेऽखिलदुःखरूप—
घटादिमोषेऽपि सुखस्वरूपम् ॥
आत्मानमेषा विषयीकरोती—
त्येषा सुखैकाकृतिरिष्यते धीः ॥ ६९ ॥

इन दोनों पूर्वोक्त पक्षों में पहिला जो पक्ष कहा है कि सभी विषयों को छोड़ के चित्तवृत्ति केवल आत्मस्वरूप वृत्ति को पकड़े रहती है इत्यादि तो इस पक्ष में यह चित्त वृत्ति केवल सुखाकार ही रहती है अर्थात् उस में दुख का लेस भी नहीं रहता क्योंकि दुःख के कारण जो जड़ पदार्थ घट पट आदि थे वे सब उस चित्त से निकल गये हैं और जो चेतन आत्मस्वरूप बाकी रह गया है उस में दुख का लेश भी नहीं है किन्तु वह केवल सुख स्वरूप ही है ॥ ६९ ॥

सर्वोऽपि जन्तुः शयनं विना नो
जीवत्यदः कामयते च सर्वः ॥

सुप्तोत्थितस्तत्समयस्य सौख्यं
सर्वः स्मरत्यत्र च नो विवादः ॥ ७० ॥

सभी जीव मात्र का यह स्वभाव है कि निद्रा को बड़ी प्रीति से चाहते हैं, और विना ठीक निद्रा हुये जीभी नहीं सकते, और निद्रा से उठ के यह भी ख्याल करते हैं और कहते भी हैं कि बड़े सुखपूर्वक मैंने निद्रा किया इत्यादि। इस विषय में किसी को भी विवाद नहीं है इत्यादि ॥ ७० ॥

श्रान्त्या महत्या परिखेदितोऽपि
रुजापि शोकादिपराहतोऽपि ॥
सुप्त्वा मतौ स्थूलशरीरकेऽपि
स्वस्थत्वमाप्नोत्यखिलो हि जन्तुः ॥ ७१ ॥

परिश्रम के थकाहट से अथवा रोग से अथवा शोक आदि से जिन जीवों का शरीर अस्वस्थ हो जाता है वे भी निद्रा के वाद कुछ न कुछ शरीर की स्वस्थता पाते हैं ॥ ७१ ॥

तदा तु नासीद् विषयस्य वुद्धिः
कस्यापि सौख्यं तु कुतस्तदीयम् ॥
तस्मात् तदा धीविषयो य आत्मा
सुखस्वरूपः स सदाभ्युपेयः ॥ ७२ ॥

तो इन सब बातों से आत्मा का स्वरूप केवल सुखरूप है यह वात मालूम पड़ती है. क्योंकि उस गाढ़ निद्रा के समय में सिवाय आत्मा के और कोई विषय चित्त में नहीं रहता है तो उस निद्रा के वाद जो सुख का स्मरण और शरीर स्वास्थ्य आदि होते हैं उनका कारण आत्मा ही को कहना पड़ेगा तो यदि आत्मा केवल सुख स्वरूप न माना जाय तो उसके विरुद्ध कार्य कैसे हो सकते हैं तस्मात् आत्मा को केवल सुखस्वरूप ही मानना चाहिये ॥ ७२ ॥

यस्मै प्रयत्नः सकलोऽपि यच्च
नान्यार्थमेतत् सुखचिह्नमिष्टम् ॥
आत्मन्यदः संघटते सदेवे-
त्ययं सुखात्मा सकलाभ्युपेतः ॥ ७३ ॥

सम्पूर्ण प्रयत्न जिसके लिये किया जाता है और जो किसी दूसरे के लिये नहीं किया जाता यही सुख का लक्षण है सो ये दोनों लक्षण सभी को सदा आत्मा ही में देख पड़ते हैं अतएव दार्शनिकों ने आत्मा को सुख स्वरूप माना है, खुलासा मतलब यह है कि यदि कोई किसी से पूछता है कि धन पुत्र आदि के लिये क्यों तुम प्रयत्न करते हो ? इत्यादि । तो इसका अखीर उत्तर यही दिया जायगा कि सुख के लिये अब यदि इसके बाद भी कोई प्रश्न करे कि सुख का प्रयत्न किसके लिये करते हो ? इत्यादि तो उसका जवाब यही हो सकता है कि सुख का प्रयत्न किसी दूसरे के लिये नहीं किया जाता है किन्तु सुखका स्वरूप ही ऐसा है कि सारे संसार भरका प्रयत्न उसीके लिये किया जाता है इत्यादि ॥ ७३ ॥

अन्यानधीनप्रियतास्पदत्वं
सुखातिरिक्तं न कदापि दृष्टम् ॥
आत्मन्यदः कस्य भवेन्न जन्तो—
स्तस्मादसौ सौख्यमयोऽभ्युपेयः ॥ ७४ ॥

जिसमें कि किसी दूसरे के आधीन प्रीति नहीं होती किन्तु स्वतः प्रीति होती है यह सुखका दूसरा लक्षण है सो यह भी लक्षण आत्मा में घटता है अतएव उस आत्मा को सुखरूप ही मानना उचित है, इसका खुलासा यह है कि यदि कोई पूछे कि धन पुत्र आदिमें तुम्हारी प्रीति क्यों होती है तो इसका उत्तर यही दिया जाता है कि धन पुत्र आदि सुखके कारण हैं अतएव